THE INTERNATIONAL ADVANCED JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY STUDIES
International Indexed Journal | Multi-Disciplinary Refereed Research Journal
Peer-Reviewed Journal - Equivalent to UGC Approved Journal
World Wide Most Trusted Research Publication Platform Since 2024

सतत् विकास एंव कृषि का आधुनिकीकरण एक अध्ययन

पूनम शर्मा
शोधार्थी (भूगोल विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर

डॉ0 सुनील कुमार
अधिष्ठाता कला वर्ग
टांटिया विश्वविद्यालय श्री गंगानगर

प्रस्तावित शोध की भूमिका

आधुनिकीकरण की अवधारणा का जन्म विश्व में बढ़ते हुए साम्यवादी विचाराधारा के प्रभाव को रोकने के लिए 20वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में हुआ। इस समय तीसरी दुनिया के तीसरे देश धीरे–धीरे सोवियत प्रभाव में आने लगे, तो पाश्चात्य देश विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका इससे अत्यधिक चिन्तित हुआ और उसने साम्यवादी प्रभाव को समाप्त करने के लिए आधुनिकीकरण का एक नारा दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका का तर्क था कि साम्यवादी विचाराधारा एक पुरानी एवं घिसे–पिटे मूल्यों पर आधारित पुरातन पंथी विचाराधारा है, जिसमें विकास की कोई संभावना निहित नहीं है। जबकि हमारी विचाराधारा नये मूल्यों पर आधारित है, हमारे यहाँ हर क्षेत्र में विज्ञान एवं तकनीकी का महत्व है, जिसके माध्यम से हम आशातीत विकास कर सकते हैं। यदि साम्यवादी विचाराधारा प्रगतिशील है तो हमारी तरह के आर्थिक विकास हेतु हर क्षेत्र में नये–नये प्रयोग दिखायें। इसी विचाराधारा को लेकर विश्व में आर्थिक विकास की होड़ चल पड़ी और हर विकासशील और विकसित देश नई–नई तकनीकियों का प्रयोग करने लगा, जिसे ष्आधुनिकीकरणष कहा गया है।

कृषि विकास के लिए उसमें नई तकनीकी, मशीनीकरण, रासायनिक उर्वरक, नई किस्मों के उन्नत बीज एवं विभिन्न कीटनाशक औषधियाँ कृषि में प्रयुक्त की जाने लगी, जिससे कृषि उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हुई और कृषक जीवन निर्वाह कृषि से व्यापारिक कृषि करने लगे जिससे कृषि के क्षेत्र में नये परिवर्तन एवं कृषि उत्पादन भी प्रभावित होने लगा। अतः यह सब कृषि में विकास का ही प्रतिफल है।

कृषि में आधुनिकीकरण की विचाराधारा का समावेश उपरोक्त विचाराधारा का ही प्रतिफल है। अतः कृषि के आधुनिकीकरण का तात्पर्य कृषि कार्यों में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकियों के समग्र उपयोग से है। भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र होते हुए भी इस शताब्दी के छठें दशक तक यहाँ की जनसंख्या के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं थे। छठे दशक में सरकार एवं कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रुप से कृषि विकास की ओर गया तथा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक विधियों के पुरजोर प्रयास प्रारम्भ किये, जिसकी परिणति हरित क्रान्ति के रुप में हुई।

सन् 1966 की खरीफ की फसल के साथ कृषि में प्रति हैक्टेयर भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाले संकर एवं बोने किस्म के बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, आधुनिक कृषि औजारों एवं मशीनों का प्रयोग किया तथा सिंचाई साधनों में वृद्धि हुई। इन सबसे 1966–1967 के बाद कृषि उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि हुई। कृषि में हुए इस क्रांतिकारी परिवर्तन को मूलतः जैविक, रासायनिक एवं यांत्रिक हरित क्रांति की संज्ञा दी जाती है।

प्रस्तावित शोध के सोपान

1. उन्नत एवं अधिक उपज देने वाले संकर एवं बौने पौधों के बीजों का विकास एवं उपयोग। इसके अन्तर्गत शीघ्र पकने वाली, कम पानी वाली तथा अधिक उपज देने वाली संकर एवं बौनी किस्म की फसलों के उपयोग में वृद्धि की गई है।
2. बहु फसली कार्यक्रम का विस्तार किया गया। इसके अन्तर्गत अल्पावधि में पकने वाली किस्मों का उपयोग किया गया।
3. रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन एवं उपयोग में वृद्धि की गई।
4. गहन कृषि के उद्देश्य से लघु सिंचाई योजनाओं को ऊँचा स्थान दिया गया।
5. शुष्क खेती एवं कम पानी वाली फसलें, कृषि की नमी रोकने सम्बन्धी उपाय आदि का विस्तार किया गया।
6. कृषि विकास हेतु बीज, उर्वरक, ऋण विपणन, संग्रहण बीमा, प्रशिक्षण, विद्युत आदि सुविधाओं के विस्तारपूर्वक कार्यक्रम आरम्भ हुए।

अधिक उपज वाली किस्मों और रासायनिक उर्वरक की इस क्रांति के विस्तार के लिए कुछ कार्यक्रम जैसे – गहन कृषि जिला कार्यक्रम एवं गहन कृषि क्षेत्रीय कार्यक्रम तथा एक मुश्त कार्यक्रम को अपनाया गया और परिणामस्वरुप कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई, जो हरित क्रांति कहलाई। कुछ विद्वान इसे हरित क्रांति कहने के बजाय भारतीय कृषि का ष्आधुनिकीकरणष कहने लगे।

प्रस्तावित शोध का महत्त्व

सतत् विकास का तात्पर्य ऐसे विकास से है, जिसमें मानव की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। वास्तविक अर्थ में इसका उद्देश्य मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना है। यहां विकास की अवधारणा मानव के जीवन स्तर को उस स्तर पर बनाये रखने से है, जिसमें मानव की मूलभूत आवश्यकताओं और गुणवत्तापूर्ण जीवन स्तर की स्थिति बनी रहे। औद्योगिक क्रांति के साथ ही विकास की प्रक्रिया मानव पर्यावरण के अंतर्संबंधों के प्रतिकूल रही और इसके दुष्प्रभावों के संदर्भ में ही सतत् विकास की अवधारणा सामने आयी। सतत् विकास की अवधारणा निम्न कारणों से है –

- मानव का विकास बिना किसी बाधा के होता रहे और मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और अनुकूलन जीवन स्तर बना रहे।
- संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग आवश्यक है और यह निर्धारित होना चाहिए।
- आने वाली पीढ़ियों के लिये संसाधन उपलब्धता बनी रहे।
- मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग सुनिश्चित हो।
- समानता के साथ विकास हो तथा प्रादेशिक एवं अंतः प्रादेशिक असंतुलन उत्पन्न न हो।
- गरीबी उन्मूलन एवं विकास का लाभ सभी वर्गों एवं सभी क्षेत्रों में पहुँच सके।

इन विभिन्न कारणों से सतत् विकास का अपनाया जाना आवश्यक है। चूँकि विकास मानव का अनिवार्य अधिकार है और इसके लिये प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता भी स्वाभाविक है। लेकिन विकास को केवल वर्तमान की आवश्यकताओं के संदर्भ में नहीं देखा जाना चाहिए, इसके लिये संसाधनों का उचित

उपयोग और संरक्षण आवश्यक है, ताकि भविष्य की पीढ़ियों के सामने संसाधन की कमी की समस्या उत्पन्न न हो। अतः सतत् विकास के अन्तर्गत मौलिक रूप से यह बात स्वीकार की गई है कि कम से कम संसाधनों का उपयोग या फिर कई संसाधनों के बगैर उपयोग के भी विकास की प्रक्रिया को अनुकूल स्तर पर बनाया रखा जा सकता है।

प्रस्तावित शोध के उद्देश्य

(i) पृथ्वी के संसाधनों का संरक्षण सतत् विकास की योजना से सम्भव हैं।

(ii) वर्तमान कृषि स्वरुप एवं संसाधनों का संख्यात्मक एवं गुणात्मक स्वरुप को प्रस्तुत किया जाना।

(iii) कृषि आधुनिकीकरण में आने वाली सामाजिक, आर्थिक बाधाओं को ज्ञात करना व उनके निराकरण हेतु सुझाव देना।

(iv) जिले में वर्तमान कृषि आधार पर भविष्य के विकास के लिये उचित प्रयासों को प्रशस्त करना।

प्रस्तावित शोध का निष्कर्ष

कृषि करने के अनुचित तरीकों द्वारा जल संसाधन भी प्रभावित हो रहे हैं। जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध नहीं होने के कारण कृषि पर निर्भरता रहती है तथा अन्धाधुन्ध व अनुचित तरीकों द्वारा जल संसाधनों का दोहन किया जाता है जिससे जल स्त्रोत एवं भूमिगत जल स्त्रोत प्रभावित हो रहे हैं। आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण कृषि, उद्योग, जनसंख्या आवश्यकता आदि क्षेत्रों में पानी की गम्भीर समस्या बनी हुई है। इसलिये सतत् विकास की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए जल संसाधनों का उचित उपयोग होना चाहिए ताकि आने वाला भविष्य भी सुरक्षित हो।

वर्षा ऋतु में अधिकांश जल व्यर्थ बहकर चला जाता है। पोखर या तालाब बनाकर जल का प्रभावी उपयोग कृषि के अन्तर्गत किये जाने की आवश्यकता है। पुराने तालाबों की मरम्मत और रख–रखाव पर विशेष ध्यान देकर सिंचित क्षेत्र में वृद्धि की जा सकती है। कृषि के विकास मंय उर्वरकों की भूमिका का उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ गोबर और हरी खाद के उपयोग को प्रोत्साहन किया जाना चाहिए। सौर

ऊर्जा का उत्पादन कर कृषि क्षेत्र में इसका बहुआयामी उपयोग संभव है। यही नहीं गोबर गैस संयंत्रों द्वारा भी कृषि क्षेत्र को लाभान्वित किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर कृषि के आधुनिकीकरण के कई प्रयास हुए हैं लेकिन अभी तक इस दिशा में विशेष उपलब्धि अर्जित नहीं हुई है। क्षेत्र में आज भी परम्परागत विधि से कृषि कार्य होने से कृषि का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर आवश्यक सिंचाई साधनों का विकास करने को प्राथमिकता दिये जाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Agarwal, R.R. (1965) : "Soil Fertility in India", Asia Publishing House, Bombay.
2. Anderson, J.R. (1970) : "A Geography of Agriculture", Iowa: W.M.C. Brown Co.
3. Arnon, I. (1981) : "Modernization of agriculture in developing countries, Resources potentials and problems", John Wliey & Sons, New York.
4. Bansal, P.C. (1977) : "Agricultural Problems of India", Vikas Publications, New Delhi.
5. भल्ला, एल.आर. (2011) : "राजस्थान का भूगोल", कुलदीप पब्लिकेशन्स, अजमेर
6. Bhatia, S.S. (1965) : "Patterns of Crop

THE INTERNATIONAL ADVANCED JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY STUDIES

International Indexed Journal | Multi-Disciplinary Refereed Research Journal
Peer-Reviewed Journal - Equivalent to UGC Approved Journal
World Wide Most Trusted Research Publication Platform Since 2024

			Concentrations and Diversification in India" Eco. Geography
7.	बसन्त मोघे (1985)	:	"राजस्थान में कृषि उत्पादन", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
8.	बारबियर, ई.बी. (1987)	:	"सतत् विकास की संकल्पना, पर्यावरणीय – संरक्षण", 14 (2) 101–110